©2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक विचारों की वर्तमान युग में उपादेयता

डॉ संगीता सिंह
495/1, अलोपी बाग,
इलाहाबाद।

महर्षि दयानन्द के शिक्षा विषयक विचार सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में संकलित है। ''अज्ञानी होना गलत नही है, अज्ञानी बने रहना गलत है।'' स्वामी जी के अनुसार ज्ञानवान बनने के लिये माता,पिता और आचार्य इन तीन शिक्षक की आवश्यकता होती है। इसमें से बालक की शिक्षा में माता का भाग और दायित्व सबसे अधिक बताया गया है। माता के द्वारा दी जाने वाली शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया गया, आचरण सम्बन्धी और प्रारम्भिक अध्ययन सम्बन्धी। इसी प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पिता के दायित्व के सम्बन्ध में उल्लेख किया है कि बालक पॉच से आठ वर्ष तक की आयु तक पिता से शिक्षा प्राप्त करें। इसके पश्चात् गुरूजन् सत्याचरण की शिक्षा शिष्य को दें। शिष्य को सच्चे अर्थो में सामाजिक व्यवहार की शिक्षा देने का दायित्व आचार्य पर है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों की शिक्षा स्त्रियों के लिए भी सुलभ कराते हुए वेद का प्रमाण प्रस्तुत किया–

'' यथेमां वाचं कल्याणी भावदानि जनेयः।
ब्रहाराजन्यायां क्षुद्राय, चार्याय च स्वाय चारणायच।।[1]

अर्थात् परमात्मा ने वेदों का प्रकाश मानव मात्र के लिए किया है। एक प्रश्न के उत्तर में स्वामी जी कहतें हैं कि शिक्षा प्राप्त करनें का जितना अधिकार द्विज को है, पुरूष को है उतना ही वैश्य, शूद्र तथा स्त्री को भी है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती नें 'अथ शिक्षांप्रवक्ष्यामं'[2] शिक्षा को ज्ञान माना है।

जिस समय भारत की धरा पर महर्षि दयानन्द का प्रकटीकरण हुआ उस समय देश में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं शोचनीय थी। उन्होने ऐसे समय में अनुभव किया कि स्त्री का उत्थान हुए बिना समाज अथवा राष्ट्र का उद्धार संभव नहीं है क्योंकि स्त्री भी पुरूष की भॉति समाज रूपी गाड़ी का एक पहिया है और स्वस्थ समाज के लिए गाड़ी का दोनो पहिया संतुलित होना चाहिए।

'शिक्षा जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटे, उसको शिक्षा कहते है, जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषो को छोड़ के सदा आनन्दित हो सके, वह शिक्षा कहलाती है।[3]

''शिक्षा के विषय में आगे स्वामी जी का विचार है कि जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर ग्रहण करने योग्य गुणों को लेकर अपने और दूसरों को सुखी बना सके वह विद्या है। जिससे पदार्थ के स्वभाव का प्रतिकूल ज्ञान हो और जिसे जानकर अपना और दूसरे का अहित कर लिया जाये, वह अविद्या है।''[4]

बालक को शिक्षा, भावी जीवन को सुंदर एवं सुखमय बनाने के लिए दी जाती है। शिक्षा का प्रयोग भी इसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए होता है। तैयारी करना और तैयार रहना शिक्षा का सार है। ''व्यक्ति के चरित्र का निर्माण, जीवनोपयोगी व्यवसाय में निपुणता प्राप्त करना , परम्परागत धार्मिक एवं संस्थागत रीति–रिवाजों, विश्वास और विचार को बनाये रखना, ये शिक्षा के कार्य है।''[5]

''केवल वर्णमाला तथा अक्षर का ज्ञान ही शिक्षा नही है, अपितु जिससे विद्या, धर्मात्मा, जितेन्द्रियता आदि की बढ़ती होवे और अविद्या आदि दोष छूटे उसको शिक्षा कहते है।''[6]

स्वामी जी ने सबके लिए शिक्षा की अनिवार्यता सिंद्ध करते हुए सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखा है '' इसमें राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पॉचवे अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के और लडकियों को घर में न रख सके , पाठशाला में अवश्य भेजे भेज देवे, जो न भेजे वह दण्डनीय हो।'' स्त्रियों को सभी प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता पर बल देते हुए आगे लिखते है '' जैसे पुरूषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिए, वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प विद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिए।[7]

श्री दयानन्द सरस्वती जी पिता और पुत्र की उपमा देकर यह भी ज्ञापित करते है कि पिता को पुत्र के लिए शिक्षा का देय भाग सबसे उत्कृष्ट भाग है। लोग अपनी सन्तान के लिए भू सम्पत्ति, भवन सम्पत्ति, धन सम्पति, धान्य सम्पति छोड़ जाते है, परन्तु शिक्षा रूपी सम्पत्ति को भुला देते है। ऐसे पिता, पिता कहलाने योग्य नहीं है और न ही उनके पुत्र नरक से छुड़ाने वाले हो सकते है। जिन माता–पिताओं ने अशिक्षित पुत्रों के हाथ में प्रचुर धन छोड़ा, उन्होने तो जाति और देश को नष्ट करने वाले सामान इकट्ठे कर दिये। उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ है 'शक्तुम इच्छा' शक्ति प्राप्त करने की इच्छा। शिक्षा निर्बल को बलवान बनाती है। '' बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्वस्तु कुतो बलम्'' जिनके पास बुद्धि है उसी का बल है, जिसके पास बुद्धि नही उसको बल नहीं।

महर्षिजी कहते है '' पशु भी सुशिक्षा पाते हुए उत्तम कार्य सिद्ध करते है, क्या फिर विद्या की शिक्षा से युक्त मनुष्य लोग सब उत्तम कार्य सिंद्ध नहीं कर सकतें।'' विद्वान पुरूष और विदुषी स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य यही है कि वह पुत्र पुत्रियों के ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से विद्वान और विदुषी सुंदर शीलयुक्त नित्य किया करें। पिता पितामह और प्रतिपितामह का धर्म है कि अपने कन्या और पुत्र को उत्तम शील से युक्त करें। ''माता पिता और आचार्यों का यही परम धर्म है, संतानों के लिए अच्छी शिक्षा की प्राप्ति कराना।''[8]

महर्षि के लिए शिक्षा का उद्देश्य केवल जीवन यापन ही नही था वरन् वह तो शिक्षा को सामाजिक विकास, व्यक्तित्व विकास में सहायक मानतें थे। व्यक्ति की सर्वांगीण शिक्षा और प्रगति ही इस पद्धति का उद्देश्य था। शारीरिक तथा मानसिक विकास और नियमन पर आत्मिक उन्नति आश्रित थी। इस प्रकार मानव का सर्वांगीण विकास स्वामी जी ने शिक्षा का उद्देश्य माना है।[9]

स्वामी जी का विचार था कि बालक को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे उसका चरित्र बने, बुद्धि का विकास हो, मानसिक शक्ति बढ़े और वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके। मन समस्त झुकावों और सभी प्रकार की प्रवृत्तियों का समवाय चरित्र है। सुख दुःख व्यक्ति की आत्मा पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते है। इन सभी प्रकार की छापों का समष्टि चरित्र है। विचारों से ही मनुष्य बनता है। जब हम विचार करते है तो प्रत्येक विचार हमारे शरीर पर कुछ असर डाल देता है। अतः शिक्षा द्वारा अच्छे विचारों का निर्माण होना चाहिए। [10]

स्वामी जी ने गरिमा पर अत्यन्त बल दिया है। ब्रह्मचर्य ब्रत ग्रहण कर विद्याभ्यास करना इसी प्रयोजन को सिद्ध करता है। उनके अनुसार सद्गुणों से विभूषित मनुष्य ही अपने समाज का कल्याण कर समता है। शिक्षा का उद्देश्य मानव में सभ्यता, सदाचार, परोपकार, आदि गुणों का विकास करना है। विद्या विलासी, घृतशील, सत्यव्रत अभिमान रहित परोपकारी, संसार के दुःख को दलन करने वाला, सद्गुणों से युक्त धन्य तथा कर्मरती व्यक्ति शिक्षा द्वारा निर्मित होना चाहिए।

महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य मे एक स्थल पर विद्यार्थी अपने गुरूजन से प्रार्थना करता है कि सर्व विद्या व्याप्त विद्वान लोगों, आप जैसे जल शुद्धि करते है वैसा मेरा जो अकथनीय निष्कर्म विकार तथा अविद्या रूपी मल है, इसको बहाइये अर्थात् दूर कीजिए।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जिन पठन पाठन विधि का प्रतिपादन किया है, उनमें विज्ञान की शिक्षा को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनके अनुसार अथर्ववेद की, जिसको शिल्प विद्या कहते है, उसको पदार्थ गुण विज्ञान क्रिया कौशल, नानाविधि पदार्थो का निर्माण, पृथ्वी से लेकर आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् सीख के अर्थ अर्थात जो ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है उसकी विद्या को सीख के दो वर्ष में ज्योतिष शास्त्र, सूर्य सिद्धान्त आदि जिसमें बीज गणित, अंक गणित, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है, इनको यथावत् सीखें। महर्षि का यह मन्तव्य था कि विज्ञान का उपयोग कर आर्थिक उत्पादन में वृद्धि करनी चाहिए और देश विदेशों में दूर–दूर तक व्यापार के लिए जाकर अपने देश को समृद्ध बनाना चाहिए। यह तभी संभव है जबकि देश के शिल्पी व कारीगर विभिन्न पदार्थ विज्ञानों में निष्ठात् होकर यांत्रिक शक्ति का उपयोग कर सके और भूमि, समुद्र तथा आकाश में चलने वाले यानों का निर्माण कर सके, जिन्हे चलाने के लिए वायु, अग्नि तथा विद्युत शक्ति का उपयोग किया जाये। औषधि ज्ञान, शल्य चिकित्सा के सम्बन्ध में भी उनका कहना था कि–

'' अध्वर्ध्यवः कत्तर्ना श्रष्टियस्यै वने नियूतं वन उन्नध्वम्।
जुषाणां हस्थममि बावसे व इन्द्राय सोम मंअिर जुहोत्।''

जो जन सूर्य किरणों से निपन्न हुए औषधि रखकर क्रिया से उत्कृष्ट करके आप सेवते तथा औरों के लिए देते है थे शीघ्र अपने कार्य को कर सकते है।

इस प्रकार स्वामी जी व्यक्ति को सभी विद्या को सीखने के हिमायती थे। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सामान्य आवश्यकता भर की विद्या अवश्य सीखनी चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती मनुष्य मात्र को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करने के प्रबल पक्षपाती थे। उनके मत में किसी को भी विद्या से वंचित रखना सर्वथा अनुचित था। स्वामी जी का कहना था कि ''दुनिया को अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिये और आपके पास सर्वश्रेष्ठ लौट कर आयेगा।''

इस प्रकार उनके शैक्षिक विचारों के आलोक में परिलक्षित होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती सभी वर्गो के शिक्षा व विकास के प्रबल पक्षधर थे व उनके द्वारा प्रतिपादित विभिन्न प्रकार की शिक्षायें जिनमें वैदिक रीति–रिवाज, रस्मों के साथ वैज्ञानिक ज्ञान के समन्वय के स्वरूप को प्रसारित करने का कार्य किया गया जिसकी परिणति के लिए कालांतर में देश भर मे डी0ए0वी0 कालेजों की स्थापना की गई जो वर्तमान में अपनी प्रासंगिकता को चरितार्थ कर रहे है।

सन्दर्भ

1. यजुः अ0 26–2
2. सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास, पृ 20।
3. दयानन्दीय लघुग्रन्थ संग्रह व्यवहार मानु. पृ0 56।
4. भारतीय शिक्षा दार्शनिक – वैदिक प्रकाशन कीर्ति देवी सेठ, पृ0–24
5. शिक्षा सिद्धान्त दर्शन – सत्य देव सिंह, पृ0–13
6. दयानन्द संदेश , अप्रेल 1994, पृ0 55।
7. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास, पृ0 –34
8. आर्य समाज का इतिहास– डॉ0 सत्यकेतु विद्या शंकर – पृ 469
9. वैदिक शिक्षा ,राष्ट्रीय कार्यशाला, पृ0 65
10. शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि– डॉ0 राम सकल पाण्डेय पृ0 217